International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

अकबर के शासनकाल में हिन्दू–मुस्लिम समन्वयवाद की प्रक्रिया: एक आलोचनात्मक अध्ययन

.....नरेश कुमार (शोधार्थी, इतिहास विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक)

सारांश (Abstract) **:-**

मध्यकालीन भारत मे हिंदू–मुस्लिम दो भिन्न संस्कृतियों के समन्वय की प्रक्रिया सम्पूर्ण मध्यकाल के दौरान एक निरंतर धारा के रूप में बहती रही है। इस प्रक्रिया ने संस्कृति के विभिन्न तत्वों–कला, साहित्य, आचार–विचार, व्यवहार सभी स्तरों पर संस्कृति व समाज को समृद्ध किया। उदारवादी तथा रूढ़िवादी दृष्टिकोणों से प्रभावित होने वाली यह प्रक्रिया सदैव एक समान गति से आगे नहीं बढ़ी। शासकों के वैयक्तिक दृष्टिकोण, धार्मिक वर्ग के प्रभाववश तथा विभिन्न परिस्थितियों के कारण यह प्रक्रिया कभी उन्नत और कभी बाधित होती रही। 16 वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की स्थापना से भारतीय वातावरण में नवीन तत्वों के समावेश से हिंदू–मुस्लिम समन्वयवाद की प्रक्रिया को नवीन दिशा मिली। बाबर तथा हुमायूं ने लड़ाईयों में उलझे रहने तथा अल्पशासन काल के कारण एक ऐसा अव्यवस्थित राज्य अकबर के लिए छोड़ा जिस पर अफगानों तथा स्थानीय हिंदू शासकों का खतरा मंडरा रहा था। ऐसे विषाक्त वातावरण में जहां हिंदू स्वयं को राज्य से जोड़कर नहीं देख रहे थे, अकबर के लिए शासन करना एक चुनौती पूर्ण कार्य था जिसे अकबर ने सहर्ष स्वीकार किया तथा अपने विवेक एवं बुद्धिमतापूर्ण नीतियों से इसमें सफलता प्राप्त की। प्रस्तुत शोध पत्र में अकबर के शासनकाल में हिन्दू-मुस्लिम समन्वयवाद की प्रक्रिया का एक आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द (Keywords):- मुगल साम्राज्य, हिन्दू-मुस्लिम, समन्वयवाद, मध्यकाल, संस्कृति

हिंदू–मुस्लिम समन्वयवाद के प्रयास अकबर के युग से पूर्व भी होते रहे हैं लेकिन इन्हें पूर्णता अकबर के समय ही प्राप्त हुई जिसने इन्हें एक विचाराधारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जबकि पूर्ववर्ती कदम विचारधारा के रूप में नही थे। वहीं अकबर की नवीनता ऐसे राजत्व के निर्माण तथा आध्यात्मिक विचारों के विकास में रही जहां वर्गीय, समुदायगत तथा जातिय विभिन्नताओं से ऊपर उठकर एक मिले–जुले शासक वर्ग का निर्माण हुआ और इसी वर्ग ने संस्कृति से संबंधित विभिन्न तत्वों को सरंक्षण दिया। इसमें स्थानीय शासक वर्ग जो यहां की परम्पराओं, लोकचारों से पूर्णतः परिचित थे, का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। अतः हमें अकबर की इस विचारधारा का अध्ययन करते हुए यह समझना होगा कि यह विचारधारा कैसे विकसित हुई, इसके लिए अकबर के कौन से व्यक्तिगत विचार या राजनैतिक आवश्यकताएँ काम कर रही थी।

अकबर के उदार व्यक्तित्व तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण के विकास के लिए उत्तरदायी कारकों में इतिहासकार अकबर के दादा, पिता, मां हमीदा बानो बेगम, अतालीक शिया बैरम खां के प्रभाव के साथ–साथ शिक्षक मीर अब्दुल लतीफ काजवीनी[1] के प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। काजवीनी ने फारसी कवि मौलाना रूमी की मसनवी का ज्ञान अकबर को कराया था। मसनवी के शब्दों को व्यक्त करते हुए काजवीनी कहते हैं ''पैगंबर मुसा को अल्लाह का संदेश है कि मैंने मानवता को समुह रूप में भेजा है, इसलिए उसे बांटो मत। भगवान ने हर व्यक्ति को अपना धर्म, अपनी भाषा प्रदान की है, विशेषकर

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

उन्हें जो सिंध या हिंद में रहते हैं।''[2] हाफ़िज के मानवीय सहानुभूति तथा उदारतापूर्ण विचारों ने भी अकबर के अंतर्मन को गहरे से प्रभावित किया होगा।[3]

15 वीं–16 वीं शताब्दी में चल रही उदारतापूर्ण भक्ति व सूफी धाराएं जो ईश्वर के प्रति प्रेम व भक्ति को रस्मी इबादत के मुकाबले ज्यादा महत्व दे रही ही थी, जहां जाति व धर्म से ऊपर मानवीय एकता पर बल दिया जा रहा था, ने भी अकबर के अंतःकरण को प्रभावित किया होगा। दादू दयाल[4] तथा मलूकदास जो अकबर के युग के प्रमुख भक्त संत थे, की विचारधारा भी इसी युग का प्रतिनिधित्व करती है। दादू, गुरु के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि 'गुरु वेद तथा कुरान से भी महान है जो दिमाग रूपी घोड़े की लगाम को नियंत्रण में रखते हैं।' मलूकदास के अनुसार तो वास्तविक धर्म व्यक्ति का आंतरिक विश्वास ही होता है।[5]

ये सारे तत्व अकबर की सांस्कृतिक विरासत का अंग थे और इनसे उसका चिंतन और राज्य विषयक नीतियां दोनों प्रभावित हुई।

अकबर की समन्वयवाद की विचारधारा को विकसित होने में लम्बा समय लगा, जब उसकी विभिन्न राजनैतिक, संस्थागत तथा धार्मिक नीतियों के साथ–साथ उसका व्यक्तिगत दृष्टिकोण भी निरंतर विकसित हुआ। सुलहेकुल पर आधारित धार्मिक सहिष्णुता की उसकी विचारधारा के विकास के लिए प्रमुख निर्धारक कारक का लेकर इतिहासकार यद्यपि भिन्न–भिन्न मत प्रकट करते हैं।[6] लेकिन अकबर के उदार व्यक्तित्व, राजनैतिक विजयों, राजपूतों से मैत्री, सूफी विचारों के प्रभावों इबादत खाने की बहसों, महजर, तौहिदे

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

इलाही तथा राजत्व सिद्धांत जैसे विभिन्न तत्वों ने उसकी विचार धारा को मजबूत आधार प्रदान किया। इन्हीं तत्वों का अध्ययन हम आगे विभिन्न चरणों के अंतर्गत करेंगे।

अकबर की इस समन्वयवादी विचारधारा के विकास का **प्रथम चरण** अकबर द्वारा सत्ता को अपने हाथों में लिए जाने के साथ ही आरम्भ हो जाता है। जब अकबर ने राजनैतिक कारणों से ही सही आरम्भिक सहिष्णु कदम उठाए।[7] 1563 में तीर्थ यात्रा तथा 1564 में जजिया की समाप्ति ऐसे ही कदम थे। यद्यपि करो की समाप्ति संबंधी कदम पहले भी शासकों (जैसे जैनुल आबिद्दीन द्वारा) उठाए गए थे लेकिन अकबर का दृष्टिकोण समन्वयवादी था। इस तरह के धार्मिक प्रतिबंध जिनसे अकबर के अनुयायी भी बहुतायात में पीड़ित थे, द्वारा राज्य का धन कमाना अकबर को अच्छा नहीं लगा।[8]

यही यह चरण था जब अकबर ने राजपूतों से मित्रवत संबंधों को बढ़ावा देना शुरू किया। 1562 ई० में भारमल की बेटी हरखाबाई से विवाह यद्यपि एक राजनैतिक कार्यवाही का परिणाम था, तथापि इस समय हरम में हिंदू राजकुमारी के आगमन से अकबर हिंदू–मुस्लिम सद्भाव की ओर आकृष्ट हुआ। इन्हीं विवाह संबंधों तथा राजपूतों को नौकरशाही में प्राप्त उच्च स्थान को देखकर 1570 में बीकानेर के राजा कल्याणमल तथा जैसलमेर के रावल हर राय ने भी बादशाह से विवाह संबंध बनाए।[9] अकबर ने विभिन्न राजपूत घरानों से जो वैवाहिक संबंध बनाए वे पूर्ववर्ती शासकों की भांति सतही नहीं (अलाउद्दीन खिलजी की भांति) थे, अपितु जैसा कि राजा भगवानदास ने अपनी बेटी के विवाह के समय अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए जब यह कहा कि 'मेरी बेटी आपके महल की नौकरानी तथा हम आपके दास हैं' तब अकबर बड़ी विन्रमता से उत्तर देते हुए

कहते हैं 'आपकी बेटी हमारे महल की रानी तथा आप सरदार हैं।'[10] इस तरह जैसा कि इनायत अली जैदी कहते हैं कि अकबर ने राजपूतों से संबंध स्थापित कर एक ओर जहां स्थानीय शासकों की ताकत को नष्ट कर दिया, वहीं दूसरी ओर उन्हें साम्राज्य के शासक वर्ग का अंग बनाकर उनकी शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि कर दी।[11] इस प्रकार मुगल–राजपूत मैत्री संबंधों ने समन्वयवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

लेकिन गहन अध्ययन तथा नवीन अनुसंधानों से ऐसा मालुम होता है कि अकबर के आरम्भिक सहिष्णु कदम राजनैतिक आवश्यकताओं से प्रेरित थे। क्योंकि उसके सामने अभी तैमुरी राज्य को सुदृढ़ता प्रदान कराने का कार्य शेष था, साथ हि वह स्वयं भी एक रूढ़िवादी मुसलमान की भांति पांच वक्त की नमाज अदा करता था, मस्जिद की सफाई करता था तथा हज के लिए प्रतिनिधिमंडल भेजता था।[12] तुरानी बहुमत वाली नौकरशाही में अब्दुल्ला सुल्तानपुरी तथा शेख अब्दुन्नबी[13] जैसे उलेमाओं का प्रभाव था जो अपनी धर्मांधता के लिए कुख्यात थे। इसलिए इस समय अकबर ने कुछ ऐसे रूढ़िवादी कदम भी उठाए जिनसे वह मुस्लिमों का समर्थन प्राप्त कर सके। 1568 में चितौड़ विजय पर जारी किया गया 'फतहनामा' तथा बिल्ग्राम के काजी अब्दुल समद तथा कस्बे के दूसरे अधिकारियों को भेजा गया फरमान जो हिंदुओं को मूर्ति पूजा करने से रोकने से सबंधित था, इसी प्रकार के उदाहरण है।[14] पानीपत के दूसरे युद्ध में विजय के पश्चात (1556 ई०) हेमु तथा उसके पिता के सम्मुख 'इस्लाम या मृत्यु' का विचार तथा हेमु के पिता की हत्या एक रूढ़िवादी इस्लामी सैनिक की भावना से किया गया कृत्य था।

लेकिन अकबर प्रकृति से जिज्ञासु एवं स्वभाव से चिंतनशील था और उसे साम्राज्य विस्तार में उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त हुई थी। इसलिए जैसा कि स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि अब बादशाह सलामत की रूचि सूफी मत से संबंधित प्रश्नों, विद्धतापूर्ण चर्चा, दर्शन तथा फिक्ह (कानून) की गुढ़ताओं के विषय में जिज्ञासा समाधान में बढ़ने लगी थी। मोसंरेट के हवाले से आलम खां बताते हैं उसकी 'प्रवृति थोड़ी बहुत म्लान' भी थी जिसे वह विभिन्न क्रीड़ाओं में अकबर की गैर मामूली दिलचस्पी का कारण बताता है।[15] हाथियों व शिकार अभियानों में उसकी दिलचस्पी का बयान तो स्वयं अबुल फ़जल भी देते हैं।[16] इस तरह के आध्यात्मिक दौरे जो मानसिक तनावों से युक्त होते थे तथा जिन्हें फ़जल ने आध्यात्मिक अनुभव का नाम दिया है ने अकबर को अपनी पिछली नीतियों तथा भावी विचारधारा पर चिंतन–ममन के लिए प्रेरित किया होगा।

इस प्रकार की राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यवाहियों के अनुभव से गुजरते हुए अकबर की विचारधारा का विकास **दूसरे चरण** में पहुंच गया। यहां 1570 का दशक उसके व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ राज्य निर्माण संबंधी नीतियों में भी महत्वपूर्ण साबित हुआ। यही वह चरण था जब अकबर को शेख मुबारक जैसे उदारवादी सूफी तथा उसके विद्वान पुत्रों को सामीप्य प्राप्त हुआ। इनके विचारों ने अकबर के व्यक्तित्व तथा विचारधारा को गहरे से प्रभावित किया।

फतेहपुर सिकरी जो अकबर की उच्च आध्यात्मिक व राजत्व शक्ति का प्रतीक है, में इबादत खाने की स्थापना करके अब अकबर ने इस्लाम की सत्यता को जानना चाहा। परंतु मुस्लिम विद्वानों की आपसी बहस से उसे शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि इन

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

आलिमों का मकसद दूसरे को नीचा दिखाकर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना मात्र था। इसीलिए 1578 में अकबर ने धार्मिक चर्चा की इस प्रक्रिया के दरवाजे भारतीय भौतिकतावादी दार्शनिकों, ईसाइयों, यहुदियों, जोरास्त्रियों के लिए भी खोल दिए। पुरुषोत्तम और दैवी सहित विभिन्न धर्मों के विद्वानों से समागम के पश्चात अकबर को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि सत्य केवल किसी एक धर्म की धरोहर नहीं है अपितु हर धर्म में छिपा हुआ है। अज्ञानी और मूर्ख लोगों के साथ ही ईमानदार और पवित्र विद्वान भी हर समुदाय में पाए जाते हैं।[17]

इबादत खाने को इन्हीं चर्चाओं के दौर से अकबर का उलेमाओं से संबंध विच्छेदन शुरू हुआ और अपनी पिछली कार्यवाहियों पर पश्चाताप भी। जैसा कि हरबंस मुखिया 'आईन' के हवाले से बादशाह द्वारा व्यक्त किए गए इस प्रकार के खेदों को संकलित करते हुए कहता है कि मुझे यह सोचकर (अकबर को) बहुत ही शर्म महसूस होती है कि हमने शक्ति प्रयोग के द्वारा बुहत से ब्राह्मण धर्म के मानने वालों को इस्लाम धर्म अपनाने को विवश किया। अब जब मेरा ज्ञान (इल्म) बढ़ा है तो मुझे अपने कृत्यों पर अफसोस होता है कि जब मैं स्वयं एक पूर्ण मुस्लिम नहीं बन सका था तो कैसे किसी और को इसके लिए विवश किया।[18]

इसी प्रकार के अनुभवों तथा इल्म के प्रभाववश अकबर ने अपने राज्य में रूढ़िवादी दृष्टिकोणों तथा कट्टर उलेमाओं के प्रभाव को खत्म करने की ओर कदम उठाए। इसकी परिणति महजर के रूप में अकबर को राज्य का आध्यात्मिक व भौतिक सर्वेसर्वा स्थापित करने के साथ हुई। यहाँ अकबर को मुजतहिद के समान रखते हुए बादशाह–ए–इस्लाम

की मान्यता की गई। इसी प्रक्रिया में उठाया गया पहला कदम जुन 1579 में जुम्मे की नमाज से संबंधित था जब अकबर ने पवित्र खलीफाओं तथा तैमुर की भांति शुक्रवार की सामुहिक नमाज की इमामियत की।

महजर जिसे विसेंट स्मिथ ने 'अनुल्लघंनीयता का फरमान'[19] तथा पाकिस्तानी इतिहासकारों ने 'कपटपूर्ण दस्तावेज' कहा है वास्तव में फ़ज़ल के मुजतहिद के दावे की अपेक्षा ऐसा दस्तावेज था जिसने ''अकबर को शासक के रूप में सरकार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न व्याख्याओं में से किसी के इच्छापूर्वक चुनाव का अधिकार दे दिया। अकबर को इमामे आदिल की स्थिति दिलवाने वाले इस दस्तावेज का वास्तविक महत्व इस बात में निहित लगता है कि अकबर ने सुलहे–कुल की जिस विचारधारा को दृढ़तापूर्वक लागू करने का निश्चय कर लिया था, उसकी यहप्रथम प्रभावकारी घोषणा थी।''[20]

इस प्रकार द्वितीय चरण की कार्यवाहियों से अकबर ने रूढ़िवादी वर्ग के वर्चस्व की समाप्ति कर सभी धर्म–पंथ के लोगों के लिए समतापूर्ण दान–दक्षिणा के द्वारा खोल दिए। सभी वर्गों, समुदायों को अनुदान दिए जाने के साथ–साथ अकबर ने फतेहपुर सिकरी के बाहर गरीब हिंदुओं व मुसलमानों के खिलाने के लिए 'धर्मपूरा' तथा 'खैरपूरा' तथा बाद में हिंदू योगियों के लिए 'जोगीपूरा' भी खोला।[21] इस प्रकार 1580 तक अकबर का अनुभव तथा विचारधारा क्रमशः विकसित होते रहे, जिनको तृतीय चरण में कार्य रूप दिया गया।

अकबर की विचारधारा के **तृतीय चरण** की शुरूआत महजर द्वारा आध्यात्मिक व लौकिक सर्वोच्चता अकबर में समाहित हो जाने से हुई। परन्तु विभिन्न प्रकार की सामुदायिक, जातिय और धार्मिक आवश्यकताओं के अनुरूप मुगल साम्राज्य को सैद्धान्तिक आधार दिए जाने का कार्य अभी बाकी था जिसे फज़ल ने भली–भांति समझकर जटिल विचार पद्धति में ढ़ाल दिया।[22]

इस विचार पद्धति के अनुसार सम्प्रभुता का प्रकाश 53 पीढ़ियों से गुजरते हुए अकबर में पहुंचा है। यहां अकबर का सम्बन्ध पैगम्बर व खलीफा के साथ न दिखाकर आदम से दिखाकर उसे मानवता के शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अकबर में संप्रभुता के प्रकाश की परिपक्वता के कारण विश्व इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार अकबर युग पुरूष हैं जो सभी प्रकार के वैमनस्यों की समाप्ति करने में समर्थ हैं।[23]

अकबर की समन्वयवाद की विचारधारा को पुष्ट करने वाली अगली महत्वपूर्ण कार्यवाही तौहिदे–इलाही से सम्बन्धित रही जिसे जेसुइट पादरियों तथा बदायुंनी ने अपनी अज्ञानता के कारण अकबर द्वारा प्रवर्तित नया धर्म कहा है। परन्तु आधुनिक अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि तौहिदे इलाही विभिन्न सूफी सिद्धान्तों, विचारों तथा दार्शनिक पद्धतियों से मिलकर बनी अकबर की निजी विचारपद्धति थी जिससे उसकी विश्व दृष्टि में घोर परिवर्तन आया।[24] इसी कारण ''जिसे वह परम्परागत धर्म गुरूओं का इस्लाम समझता था, उसे छोड़कर पूर्णतः नई धारणाओं को अपनाया जो विभिन्न धर्मों को अलग

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

करने वाली सीमाओं का अतिक्रमण करती थी और जिसका सारतत्व अकबर के मुताबिक यह नहीं था कि अपने अकीदों की तोतारटंत की जाए अपितु यह था कि व्यक्ति बेपनाह ताकतवर दुनियावी इच्छाओं और वासनाओं के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार और समर्थ हो।''[25] सूफी मत के प्रति अकबर की आस्था तथा निर्गुण भक्त संतों की गुरू–शिष्य परम्परा ने भी अकबर को अपने अनुयायियों का आध्यात्मिक नेतृत्व करने को प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार परम्परागत कट्टर हिन्दू तथा मुस्लिम धर्मों के प्रभाव से मुक्त इस विचार पद्धति में आध्यात्मिक नेतृत्व अकबर के हाथों में सन्निहित था जो इतवार के दिन अपने मुरीदों को दीक्षित करता था। दीक्षा के समय जो शब्द कहे जाते थे उसके विषय में जहांगीर लिखता है कि ''उसे (मुरीद) समुदायगत झगड़ों से स्वयं को दूर कर लेना चाहिए तथा सभी धर्मों के सम्बन्ध में सार्वजनिक सहिष्णुता के पथ का अनुसरण करना चाहिए। हाँ, युद्ध व शिकार इसका अपवाद हो सकते हैं।''[26]

इस तरह जैसा कि जे० एफ० रिचर्डस कहते हैं, ''मुरीदी सरदारों के एक वर्ग को जो विषम तत्वों से बना था, एकीकृत करने और सिंहासन के प्रति निष्ठा से बांध देने का अत्यन्त प्रभावकारी उपाय था।''[27] इस प्रकार अकबर की व्यक्तिगत विचार पद्धति मुगल साम्राज्य के उदार सिद्धान्तों में अर्थात् सार्वलौकिक सहिष्णुता में समाविष्ट हो गई। तात्पर्य यह है कि अकबर की रिआया में हर एक भले ही वह अकबर को अपना आध्यात्मिक गुरू

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

मानता हो या नहीं, अन्य जातियों व धर्मों के प्रति शांति व सामंजस्य का सिद्धान्त मानने को बाध्य था।

अकबर की इस समन्वयवाद या सुलहे–कुल की विचारधारा का विकास बेरोक–टोक या चुनौतियों से रहित नहीं रहा। अपितु रूढ़िवादी मुल्लाओं तथा ईसाई पादरियों ने अकबर पर विभिन्न प्रकार के दोषारोपण किए हैं। क्योंकि अकबर जिस मिले–जुले शासक वर्ग तथा राजत्व सिद्धान्त के निर्माण का प्रयत्न कर रहा था, वह इस धर्मांध वर्ग की समझ से परे की बात थी। इसीलिए ईसाई पादरियों ने अकबर की विभिन्न धर्मों के प्रति जिज्ञासा को उसका इस्लाम से अलगाव समझ लिया। इसी प्रकार के रूढ़िवादी विचार बदायूँनी तथा शेख अहमद सरहिंदी के रहे। जहांगीर के समय शेख फरीद को लिखे एक पत्र में जहांगीर के सिंहासनारोहण पर खुशी व्यक्त करते हुए कहता है ''अतीत में कभी–भी मुस्लिमों की स्थिति इतनी बूरी नहीं रही जितनी पिछले शासन काल (अकबर) में। इस्लामी राज्य में काफिरों को अपने धर्म का पालन करने की स्वतन्त्रता थी जबकि मुस्लिम इस्लामी कानूनों को जारी नहीं कर सकते थे, ऐसा करने पर उन्हें दंड दिया जाता था।''[28] मुस्लिम प्रतिक्रियावाद के संचालक ये रूढ़िवादी मुल्ले जो 'इस्लाम खतरे में है' का नारा दे रहे थे असल में राज्य में इस्लाम तथा अपनी स्वयं की स्थिति में ह्रास को देखकर बौखला गए थे।

इस प्रकार समन्वयवाद की जिस विचारधारा को अकबर ने सुलहे–कुल (राजत्व सिद्धान्त के द्वारा भी) के द्वारा कार्यान्वित करने का निर्णय लिया था उसे पुष्ट करने वाले

कारक भी उसके शासन काल में क्रमिक रूप से आगे बढ़े। इस दृष्टि से पहला महत्वपूर्ण कदम राजधानी के रूप में फतेहपूर सिकरी का निर्माण था। राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त जैसा कि जे० एफ० रिचर्डस बताते हैं कि सिकरी के निर्माण में अकबर के वैचारिक हितों की भी पूर्ति हुई। महलों के बीच बनी मस्जिद में अकबर ने चिश्ती का मकबरा बनवाकर सांकेतिक रूप से राजनैतिक व आध्यात्मिक सत्ता का एकीकरण कर दिया।[29] ताराचन्द के अनुसार ''अकबर का बौद्धिक युग जब दो संस्कृतियों का सही मायनों में मिलन हुआ, तब सिकरी की इमारतें उन्हीं भावों को अभिव्यक्त करती दिखती है जिनको दीने–इलाही में देखा जाता है।''[30]

इसी प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण कारक अनुवाद विभाग, चित्रकारी, संगीत कला, भाषाई विकास तथा सामाजिक आदान–प्रदान के क्षेत्र रहे। इस समय सिंहासन बतीसी, नल दमयन्ती, पंचतंत्र जैसी कथाओं के साथ–साथ रामायण, महाभारत और अथर्ववेद जैसे धर्म ग्रंथों का अनुवाद भी करवाया गया। इसके पीछे जो उद्देश्य था उसके विषय में फजल महाभारत की प्रस्तावना में बताते हैं कि अंधानुकरण के युग धराशाही हो तथा धार्मिक मामलों में जिज्ञासा तथा अनुसंधान के नए युग की शुरूआत।[31]

इसी प्रकार चित्रकला में भारतीय रंगों (नीला, लाल) को शामिल करके अकबर ने चित्रकला के जिस भारतीय स्कूल की स्थापना की, वह विभिन्न धर्मों, जातियों व समुदायों का ऐसा संगठन था जिनका एकमात्र उद्देश्य ऐसे उत्कृष्ट चित्र बनाना था, जिन्हें कला

का पारखी मुगल सम्राट पसंद कर सके। गणित, ज्यामिति, इतिहास, कृषि जैसे विषयों को प्रोत्साहन देकर न केवल शिक्षा को परम्परागत धार्मिक विषयों से ऊपर उठाया अपितु फारसी जानने वाले हिन्दुओं[32] को शिक्षकों के रूप में नियुक्त करके सद्भाव की नई शुरूआत की। इसी तरह अकबर के संरक्षण में हिन्दू तथा ईरानी संगीत पद्धतियों के मिश्रण द्वारा तानसेन ने जिस संगीत पद्धति को प्रस्तुत किया वह हिन्दू–मुस्लिम दोनों समुदायों में समान रूप से लोकप्रिय हो गई।[33] अकबर द्वारा मीना बाजार की स्थापना भी ऐसा ही एक सामंजस्य वाला प्रयास रहा है। बादशाह को जनता से सीधे सम्पर्क में लाने वाला यह अयोजन सभी प्रकार के जातिय, वंशीय, समुदायगत भेदों से परे हिन्दू–मुस्लिम प्रजा को एक समान मंच प्रदान करता था।[34]

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की धार्मिक तथा राजनैतिक कठिनाईयों से जूझते हुए सामान्य शांति के जिस सिद्धान्त का निर्माण अकबर द्वारा किया गया उससे राज्य तत्वतः उदार और धर्म निरपेक्ष बन गया। इससे न केवल मुगल अभिजात वर्ग में संतुलन बना अपितु सांस्कृतिक लोकाचार को भी प्रोत्साहन मिला। 16वीं सदी में जिस समय यूरोप कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के धार्मिक झगड़ों में उलझा हुआ था, उस समय अकबर ने सभी धर्मों के सह अस्तित्व की जो विचारधारा अपनाई, उसने सभी हिन्दुस्तानियों के लिए योग्यता के आधार पर उन्नति के अवसर खोल दिए। परन्तु जिस समाज का अकबर संचालक था उसका सोपान व स्वरूप नितांत पारम्परिक था। अतः अकबर की समानता व उदारता की भावना से युक्त विचारधारा को चुनौतियां मिलना स्वाभाविक था। इन

समस्याओं से जुझने का कार्य अकबर के उतराधिकारियों को करना पड़ा तथा अकबर की समन्वयवाद की विचारधारा इनसे प्रभावित होती चली गई। जहांगीर तथा शाहजहाँ के अन्तर्गत हमारा अध्ययन इसी प्रभावित विचारधारा के विश्लेषण पर केन्द्रित होगा जो परिस्थितियों के अनुसार ढ़लती गई।

सन्दर्भ-:

[1] (जिसे उसकी उदारता के कारण भारत में सुन्नी तथा ईरान में शिया समझा जाता था.....देखिए, नुरूल हसन, 'आस्पैक्ट ऑफ स्टेट एण्ड रिलीजन इन मिडिवल इडिया' संपादित सतीश चन्द्र, *रिलीजन, स्टेट एण्ड सोसायटी इन मिडिवल इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 2010 पृष्ठ 72)

[2] नुरूल हसन, 'आस्पैक्ट ऑफ स्टेट एण्ड रिलीजन इन मिडिवल इडिया' संपादित सतीश चंद्र, *रिलीजन स्टेट एण्ड सोसायटी इन मिडिवल इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 2010 पृष्ठ 72

[3] वही : पृष्ठ 72

[4] (दादू अकबर के समय का महान भक्त संत था जिसका मुख्य केंद्र नारायणा में रहा। यहां दादू पंथियों का वार्षिक समारोह उस महान संत की याद में मनाया जाता है, जिसने जाति व पंथ की सभी खाईयों को एक स्नेह के धर्म से भरना चाहा था। देखिए ताराचंद, *इन्फलुएश ऑफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर* : पृष्ठ 188)

[5] तारचंद, *इन्फलुएश ऑफ इस्लाम ऑन इडियन कल्चर* : पृष्ठ 188–189

[6] (इस दृष्टि से एस० आर० शर्मा (*द रलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पररस*) जहां अकबर की सहिष्णु धार्मिक नीति को ही राज्य संरचना के आधार में देखते हैं, वही हरंबस मुखिया (*द मुगलस ऑफ इंडिया*) में अकबर के राजत्व सिद्धांत को उसकी विचारधारा जो सार्वलौकिक शांति से जुड़ी थी, के लिए उत्तरदायी कारक मानते हैं। वास्तव में ये सभी तत्व एक दूसरे से इस प्रकार गुत्थे हुए हैं कि इन्हें एक–दूसरे से अलग–अलग नहीं समझा जा सकता .....)

[7] इक्तिदार आलम खान, 'अकबर के अंतर्गत अमीर वर्ग और उसकी धार्मिक नीति का विकास', सम्पादित इरफान हबीब, *मध्यकालीन भारत–भाग–2*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989 : पृष्ठ 75

[8] सतीश चन्द्र, *मध्यकालीन भारत – सल्तनत से मुगलो तक*, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स चतुर्थ संस्करण नई दिल्ली, 2008 : पृष्ठ 168

[9] वही : पृष्ठ 168–69

[10] युसूफ हुसैन, *ग्लिम्पसिज ऑफ मिडिवल इंडियन कल्चर* : पृष्ठ 95–96

[11] एस० इनायत अली जैदी, 'अकबर तथा राजपूत रजवाड़ों का साम्राज्य में एकीकरण' सम्पादित इरफान हबीब, *मध्यकालीन भारत, भाग–6*, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1999 : पृष्ठ 21

[12] सतीश चन्द्र, *मध्यकालीन भारत : सल्तनत से मुगलो तक*, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स चतुर्थ संस्करण, दिल्ली, 2008 : पृष्ठ 168

[13] (अब्दुन्नबी को अकबर ने उस सद्र–उस–सुदूर के पद पर नियुक्त किया था, जिससे अकबर हदीस की तकरीरे सुना करता था, वह इतना रूढ़िवादी था कि रेशमी अंगरखा पहनने वालों को अपनी तकरीर में शामिल नहीं होने देता था .....)

[14] इक्तिदार आलम खान, 'अकबर के अंतर्गत अमीर वर्ग और उसकी धार्मिक नीति का विकास', सम्पादित इरफान हबीब, *मध्यकालीन भारत, भाग–2*, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1989 : पृष्ठ 75

[15] इक्तिदार आलम खान, 'अकबर के व्यक्तित्व की विशेषताएं और उसकी विश्व–दृष्टि : एक आलोचनात्मक पुनर्मूल्याकंन' सम्पादित इरफान हबीब, *मध्यकालीन भारत–भाग–6*, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1999 : पृष्ठ 39–51

[16] अबुल फ़जल, *आइने–अकबरी*, अनुवादित एवं सम्पादित एच० ब्लोकमैन, भाग–1, ओरियन्टल बुक्स रिपरिन्ट कोर्पोरेशन, नई दिल्ली, 1977 : पृष्ठ 123–137

[17] ए० एल० श्रीवास्तव, *अकबर द ग्रेट–भाग–2*, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, द्वितीय संस्करण, आगरा, 1973 : पृष्ठ 309

[18] हरबसं मुखिया, *द मुगलस ऑफ इंडिया*, ब्लैकवैल पब्लिशिंग विले इंडिया प्रा० लि०, पुनर्मुद्रण नई दिल्ली, 2008 : पृष्ठ 37–38

[19] वी० ए० स्मिथ, *अकबर : द ग्रेट मुगल*, एस० चन्द एण्ड क० प्रा० लि०, पुनर्मुद्रित, दिल्ली 1966 : पृष्ठ 154–155

[20] एस० ए० ए० रिजवी, *रिलिजियस एण्ड इन्टेलेक्चुअल हिस्ट्री ऑफ द मुस्लिमस इन अकबर रिजन*, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1975 : पृष्ठ 148

[21] एस० आर० शर्मा, *द रिलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पररस*, बुक एनकलेव, पुनर्मुद्रित जयपुर, 2001 : पृष्ठ 32

[22] सतीश चन्द्र, *मध्यकालीन भारत : सल्तनत से मुगलों तक, भाग–2*, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, चतुर्थ संस्करण, दिल्ली–2008 : पृष्ठ 178–179

[23] अबुल फजल, *आईने–अकबरी*, अनुवादित तथा सम्पादित एच. ब्लॉकमैन, ओरियन्टल बुक्स रिपरिन्ट कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली, 1977 : पृष्ठ 175–177

[24] इक्तिदार आलम खान, 'अकबर के व्यक्तित्व की विशेषताएँ और उसकी विश्व दृष्टि – एक आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन', इरफान हबीब, *मध्यकालीन भारत, भाग–6*, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1999 : पृष्ठ 43

[25] वही : पृष्ठ 43–44

[26] *तुजुक–ए–जहांगीरी*, अनुवादित तथा सम्पादित अलैक्जैंडर रोजरस एवं एच० बेवरिज, भाग–1, पुनः मुद्रित नई दिल्ली, 1989 : पृष्ठ 60–61

[27] जे० एफ० रिचर्डस, 'द फॉर्मुलेशन ऑफ इम्पीरियल अथॉरिटी अंडर अकबर एण्ड जहांगीर', सम्पादित जे० एफ० रिचर्डस, *किंगशिप एण्ड अथॉरिटी इन साउथ एशिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1988 : पृष्ठ 286–287

[28] नुरूल हसन, 'शेख अहमद सरहिंदी एण्ड मुगल पॉलिटिक्स' सम्पादित सतीश चंद्र, *रिलीजन स्टेट एण्ड सोसायटी इन मिडिवल इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 2010 : पृष्ठ 90–101

[29] जे० एफ० रिचर्डस, 'द फॉर्मुलेशन ऑफ इम्पीरियल अथॉरिटी अंडर अकबर एण्ड जहांगीर', संपादित जे० एफ० रिचर्डस, *किंगशिप एण्ड अथारिटी इन साउथ इंडिया*, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1988 : पृष्ठ 290–292

[30] ताराचन्द, *इन्फलुएंश ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर*, द इंडियन प्रैस प्रा० लि०, इलाहाबाद, 1963 : पृष्ठ 248–249

[31] मुहम्मद अतहर अली, 'ट्रांशलेशनस ऑफ संस्कृत वर्क्स एट अकबरस कोर्ट', *मुगल इंडिया स्टडीज इन पॉलिटी, आईडियाज, सोसायटी एण्ड कल्चर*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 2010 : पृष्ठ 171–182

[32] ऐसे हिन्दू शिक्षकों में नारायण, माधो भट्ट, श्री भट्ट, बिशन नाथ, राम किशन, बलभद्र, वासुदेव मिश्र, विद्या निवास, गौरी नाथ, गोपी नाथ, किशन पंडित, भट्टाचार्य, भागीरथ, काशीनाथ, महादेव, भीमनाथ और नरेन शिवाजी का नाम लिया जा सकता है। संदर्भ के लिए देखिए – युसूफ हुसैन, *रिलम्पसिज ऑफ मिडिवल इन कल्चर*, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, 1973 : पृष्ठ 70

[33] तानसेन एक धर्मांतरित मुस्लिम था, जिसे पहले ग्वालियर के शासक का संरक्षण प्राप्त था। उसकी योग्यता के विषय में अबुल फजल कहते हैं कि उसके जैसा संगीतज्ञ पिछले हजार वर्षों से हिन्दुस्तान में नहीं हुआ। उसकी लोकप्रियता इतनी रही कि उसके द्वारा रचित राग आज भी सम्पूर्ण उत्तरी

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

भारत में गाए जाते हैं – संदर्भ के लिए देखें – युसूफ हुसैन, ग्लिम्पसिज ऑफ मिडिवल इंडियन कल्चर : पृष्ठ 106–107

[34] वही : पृष्ठ 107–108